17 नवम्बर 2014, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-32 / 2012-14

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के व्याख्यान प्रतिदिन अब आधे घंटे

जी-जागरण पर

प्रतिदिन प्रातः 6.30 से 7.00 बजे तक

वर्ष : 37, अंक : 16 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये

नवम्बर (द्वितीय), 2014 (वीर नि. संवत्-2541) सह-सम्पादक : **डॉ. संजीवकुमार गोधा व पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

साप्ताहिक गोष्ठी संपन्न

जयपुर (राज) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में साप्ताहिक गोष्ठियों की श्रृंखला में दिनांक 8 नवम्बर को **'सिद्धचक्र विधान एवं सिद्धों का स्वरूप'** विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया।

इस गोष्ठी की अध्यक्षता ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री खनियांधाना ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्रीमती मंजु पहाड़िया किशनगढ एवं विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री कैलाशचंदजी सेठी जयपुर, श्रीमती संध्या लुहाड़िया जयपुर व श्रीमती कमला भारिल्ल उपस्थित थे।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में उपाध्याय वर्ग में श्रुति जैन जयपुर (उपाध्याय कनिष्ठ) एवं शास्त्री वर्ग में जिनेश सेठ मुम्बई (शास्त्री तृतीय वर्ष) रहे। मंगलाचरण आयुष जैन दिल्ली (उपाध्याय कनिष्ठ) ने किया।

गोष्ठी का संचालन नितिन जैन झालरापाटन एवं प्रखर जैन छिन्दवाड़ा (शास्त्री तृतीय वर्ष) ने किया।

मंचासीन महानुभावों को ग्रंथ भेंट श्री निर्मलजी लुहाड़िया व श्रीमती कमला भारिल्ल ने किया। आभार प्रदर्शन पण्डित सोनूजी शास्त्री ने किया।

दिनांक 9 नवम्बर को **'मोक्षमार्गप्रकाशक के कतिपय प्रमुख बिन्दु'** विषय पर शास्त्री वर्ग की एक गोष्ठी का आयोजन किया गया।

इस गोष्ठी की अध्यक्षता पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर ने की।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में विनीत जैन (शास्त्री तृतीय वर्ष) एवं निधि जैन (शास्त्री द्वितीय वर्ष) रहे। मंगलाचरण विनीत जैन (उपाध्याय कनिष्ठ) ने किया।

गोष्ठी का संचालन सौरभ जैन एवं श्रीशांत उखलकर (शास्त्री तृतीय वर्ष) ने किया। आभार प्रदर्शन पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री ने किया।

प्रवचनसार पर प्रवचन प्रारम्भ

तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा प्रवचनसार पर प्रवचन श्रृंखला प्रारंभ की गई है। ये प्रवचन टोडरमल स्मारक भवन में प्रात: 8.30 से 9.30 बजे तक हो रहे हैं। सभी साधर्मीजन प्रवचनों का लाभ लेने हेतु आमंत्रित हैं। ये प्रवचन यूस्ट्रीम व यूट्यूब पर भी उपलब्ध हैं, जिन्हें आप **www.ustream.tv/channel/ptst** पर लाइव देख सकते हैं।

सिद्धचक्र महामंडल विधान संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर दिनांक 30 अक्टूबर से 6 नवम्बर 2014 तक **श्री सुरेशचन्द अजीतकुमार वैभवकुमार तोतूका परिवार जयपुर एवं श्रीमती ललितादेवी धर्मपत्नी स्व. गोपीचन्दजी लुहाड़िया व निर्मल-रमेश-अरुण-प्रतीक-लव लुहाड़िया परिवार जयपुर** की ओर से आयोजित श्री सिद्धचक्र महामंडल विधान बहुत हर्षोल्लासपूर्वक संपन्न हुआ।

इस अवसर पर प्रात: सिद्धचक्र महामण्डल विधान के मध्य तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा **'भगवान महावीर का जीवन और सिद्धान्त'** विषय पर मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। विधानोपरान्त डॉ. संजीवकुमारजी गोधा द्वारा प्रतिदिन क्रमबद्धपर्याय पर कक्षा का लाभ मिला।

रात्रि में जिनेन्द्र भक्ति एवं छात्र प्रवचन के उपरान्त पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल जयपुर, ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री खनियांधाना, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल मुम्बई, पण्डित नन्दकिशोरजी मांगुलकर काटोल, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर, पण्डित अनेकान्तजी भारिल्ल मुम्बई आदि अनेक विद्वानों के प्रवचनों का लाभ मिला। तदुपरान्त डॉ. दीपकजी जैन 'वैद्यरत्न' जयपुर द्वारा प्रतिदिन गोम्मटसार पर कक्षा का लाभ मिला।

विधान के अवसर पर बीच-बीच में अनेक छंदों का अर्थ ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील जयपुर व डॉ. संजीवकुमारजी गोधा द्वारा समझाया गया। कार्यक्रम में टोडरमल महाविद्यालय के विद्यार्थियों सहित लगभग 500-600 साधर्मियों ने लाभ लिया।

विधान के अंतिम दिन मंगल कलश भव्य शोभायात्रापूर्वक विधानकर्त्ता परिवार के घर पर ले जाया गया। अन्तिम दिन पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा दोनों विधानकर्त्ता परिवारों का सम्मान हुआ। एक दिन दोपहर में वीतराग-विज्ञान महिला मंडल बापूनगर द्वारा भजनों का कार्यक्रम आयोजित किया, जिसमें दोनों विधानकर्त्ता परिवारों का सम्मान भी किया।

विधि-विधान के समस्त कार्य ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना ने पण्डित सोनूजी शास्त्री जयपुर व पण्डित विवेकजी शास्त्री दलपतपुर के सहयोग से संपन्न कराये। कार्यक्रम का निर्देशन श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल एवं श्री शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने किया।

इस विधान के सुन्दर आयोजन को देखकर वर्ष 2015 की कार्तिक माह की अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर सिद्धचक्र विधान के लिए भी 2 मुख्य विधान आमंत्रणकर्त्ता एवं 5 सहयोगी विधानकर्त्ताओं की स्वीकृति प्राप्त हुई है।

सम्पादकीय –

होनी को कौन बदल सकता है?

– पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

विज्ञान के अहं पर चोट करते हुए सुदर्शन ने कहा ''क्यों रे विज्ञान ! तू कल दिनभर कहाँ छिपा रहा ? इसतरह कब तक छिपता रहेगा ? क्या अभी भी लड़कियों की तरह रंग-गुलाल से डरता रहेगा ?

विज्ञान ने उत्तर दिया – ''डरने की तो कोई बात नहीं है मित्र ! परन्तु मुझे यह होली की हुड़दंग बिलकुल पसंद नहीं है। मैं खूब सोचता हूँ, पर मेरा मन ही नहीं होता इस रासलीला में शामिल होने का।''

पास ही खड़े ज्ञान ने सुदर्शन के कान में कुछ कहा और दोनों मन ही मन मुस्कराते हुए कक्षा में चले गये।

कहने को तो होली का त्यौहार एक दिन का ही होता है, पर वस्तुत: इसका प्रभाव रंग पंचमी तक रहता है। भले छुट्टियाँ न भी हों, तो भी स्कूल और कार्यालय इसके प्रभाव से अछूते नहीं रहते।

जो गम्भीर प्रकृति के होते हैं, जिन्हें अधिक हुड़दंग पसन्द नहीं है, जब वे भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रह पाते तो फिर जैननगर की शासकीय शाला के छात्र-छात्रायें इसके प्रभाव से अछूते कैसे रह सकते थे ?

होली के दूसरे दिन शासकीय नियम के अनुसार रंग व गुलाल से होली खेलने का निषेध होने पर भी बालक-बालिकाओं के दिलों में रंगारंग की उमंग कम नहीं हुई थी। इनकी देह पर से भी अभी पूरी तरह रंग नहीं उतरा था।

अधिकांश छात्र-छात्राओं की चोरजेबों में रंग और गुलाल की पुड़ियाँ छुपी-छुपी मुस्करा रही थीं तथा उनके गालों की लाली बनने की प्रतीक्षा कर रही थीं।

ज्यों ही मध्यावकाश की घंटी बजी कि क्षणभर में सभी छात्र-छात्राएँ क्रीड़ा शिक्षक के निर्देशानुसार खो-खो खेलने खेल के मैदान में पहुँच तो गये, पर शिक्षक के देखते ही देखते पलभर में शाला का सम्पूर्ण वातावरण होली की हुड़दंग में बदल गया।

विज्ञान के सिवाय उनमें एक आठ वर्षीय तीसरी कक्षा में पढनेवाली भोली-भाली सूरतवाली 'विद्या' नाम की लड़की भी ऐसी थी, जिसे रंग-गुलाल लगाना व लगवाना बिलकुल ही पसन्द नहीं था। यदि कोई उसे हठाग्रह करके रंग-गुलाल लगा देता तो वह घंटों रोती रहती थी। पर पता नहीं आज उसका हृदय किस तरह उत्साह व उमंग से भर उठा और न मालूम उसे क्या सूझा कि उसने शाला के मध्यावकाश में, जब खो-खो का खेल होली की हुड़दंग में बदल गया था, तब उसने चुपके-चुपके से विज्ञान के पीछे जाकर धीरे से उसके गालों पर गुलाल मल दी और जोर-जोर से ताली बजाते हुए खिल-खिलाकर हंस पड़ी। पर ज्यों ही अन्य छात्र-छात्राओं ने उसकी ओर आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा तो वह सहम गई, शरमा गई और अपने में ही सिमट गई।

उस बालिका की इस असंभावित सहज स्नेहपूर्ण शरारत को देखकर बालक विज्ञान क्षणभर तो स्तंभित रह गया, पर थोड़ी ही देर में उसके मन में भी किसी अन्त:करण के कोने से सुषुप्त संस्कार जागृत हो गये और अज्ञात अन्त:प्रेरणा से प्रेरित होकर उसने भी चुपचाप अपने मित्र से गुलाल की पुड़िया माँगकर विद्या के गालों पर मलते हुए माथे में सिन्दूर सा भर दिया।

उनके इस अप्रत्याशित व्यवहार को देखकर सभी छात्र-छात्रायें तो अचंभित थे ही, अध्यापक-अध्यापिकाएँ भी उन्हें आश्चर्यभाव से देख रहे थे और परस्पर में कह रहे थे कि ''इनके इस व्यवहार को देखकर तो ऐसा लगता है कि इनका तो पिछले जन्म-जन्मान्तर का कोई अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनके ये संस्कार इस जन्म में भी इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकते।''

कक्षा पाँच के बाद तो वे सब बिखर गये; पर बड़े होने पर विज्ञान, विद्या, ज्ञान और सुदर्शन चारों चार राहों से आकर फिर एक चौराहे पर मिल गये।

जिसका जिसके साथ जिस तरह का संस्कार होता है, प्रकृति उसे सहज रूप से ही मिला देती है।

ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन एक ही नगर के रहने वाले और एक साथ खेलने वाले बालसखा थे। तीनों की प्रारम्भिक शिक्षा एक ही स्कूल में हुई थी, पर सुदर्शन और ज्ञान के पिता ने प्रारम्भ से ही अपने बेटों को लौकिक शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा और धार्मिक संस्कार भी दिये थे; परन्तु दुर्भाग्य से विज्ञान को यह सौभाग्य नहीं मिल पाया था।

विज्ञान का परिवार भी धार्मिक तो था, पर परिस्थितियों की प्रतिकूलताओं ने उसे ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया था, जहाँ से केवल एक ही रास्ता खुलता था और वह था पश्चिमी

सभ्यता और संस्कृति से युक्त भौतिकवाद का।

उसकी माँ तो उसके जन्म लेते ही चल बसी थी, पिताश्री को अपने कल-कारखाने संभालने और उद्योग-धंधों से ही फुर्सत नहीं थी; दुर्भाग्य से दादाजी का सानिध्य भी बहुत समय तक नहीं मिल सका था। वे भी विज्ञान को पाँच वर्ष का छोड़ दिवंगत हो गये; पर जब तक रहे, तब तक उसे अपने पास ही सुलाते रहे और जब तक उसे नींद नहीं आ जाती तब तक सदाचार प्रेरक पौराणिक कहानियाँ सुनाते रहे। बचपन में विज्ञान को कहानियाँ सुनने का शौक भी बहुत था।

दादाजी जानते थे कि बचपन के ये संस्कारों के बीज निश्चित ही समय पर वातावरण का जल पाकर अंकुरित हो जायेंगे, अत: उन्होंने सोचा - ''अभी जितने गहरे संस्कार डल जावे उतना ही अच्छा।''

पर होनी को कौन टाल सकता है, उसे उनका पूरा लाभ नहीं मिलना था, सो नहीं मिला, असमय में ही उनकी छत्रछाया भी उस पर से उठ गई।

माँ का निधन हो जाने से वह बचपन में तो अधिकांश धाय माँ और नौकरों के हाथों में ही रहा और बड़ा होते ही पांचवीं कक्षा के बाद उसे एक ऐसे इंग्लिश-मीडियम स्कूल एवं हॉस्टल में प्रविष्ट कर दिया गया, जिसमें वह अपनी भारतीय संस्कृति और सदाचार से दिन-प्रतिदिन दूर-अतिदूर होता चला गया। इसकारण उसे भारतीय श्रमण संस्कृति की हर बात अटपटी पोपडम सी लगने लगी। वह करे तो करे भी क्या ? उसका उठना-बैठना, रहन-सहन, बोलचाल, खानपान - सबकुछ बदल चुका था। वातावरण बदल जाने से दादाजी द्वारा डाले गए संस्कारों का रंग भी फीका पड़ गया था। अब उसे अंडे और आमिषमय भोजन में हिंसा के बजाय विटामिन और शरीर पोषक तत्त्व ही नजर आने लगे थे।

अब जब भी वे तीनों बालसखा आपस में एकदूसरे से मिलते, तभी किसी न किसी बात पर उनमें भारतीय संस्कृति के विषय में बहस और नोंक-झोंक हो जाया करती थी।

ईसाई मिशनरी द्वारा संचालित स्कूल और कॉलेज में पढने तथा हॉस्टल में लगातार पन्द्रह वर्ष के लम्बे समय तक रहने के कारण विज्ञान के खानपान और रहन-सहन में तो सम्पूर्णत: भौतिकवाद के संस्कार आ ही गए थे, पूजा-पाठ जैसे पवित्र अनुष्ठानों पर से भी उसकी आस्था और विश्वास उठ गया था। केवल एक मानव सेवा ही धर्म है, शेष सब ढोंग है, पाखण्ड है, आडम्बर है - ऐसी धारणाओं ने उसके चिन्तन को विकृत कर दिया था।

इसके सिवाय हृदय को हिला देने वाली ईसामसीह की कुर्बानी की कहानियों ने उसके कोमल हृदय पर ऐसी छाप छोड़ी कि अब उसे एकमात्र यीशू ही सर्वश्रेष्ठ महामानव या ईश्वरीय अवतार के रूप में वन्दनीय एवं प्रात: स्मरणीय हो गये थे।

जब तक वह स्नातक होकर घर लौटा तब तक उसके पिता लक्ष्मीकान्त बड़े लोगों को होने वाले सभी राज रोगों से घिर चुके थे। उनका उद्योग-धंधा केवल भगवान के भरोसे और मुनीम-गुमास्तों एवं मैनेजरों के बल पर ही चल रहा था। घर में कोई दूसरा सहारा तो था नहीं, अत: वे विज्ञान की वापसी की बड़ी बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहे थे।

विज्ञान की वापसी से एक ओर जहाँ उन्हें भारी राहत महसूस हुई, वहीं दूसरी ओर उसके बदले हुए विचार, एकदम पश्चिमी सभ्यता के रहन-सहन और खानपान ने उन्हें विस्मित कर दिया।

उन्होंने तो उसी ईसाई मिशनरी स्कूल और हॉस्टल की ही सर्वाधिक प्रशंसा सुनी थी, अत: व्यापारिक दृष्टि से अंग्रेजी मीडियम से लौकिक शिक्षा दिलाने और नैतिक एवं सदाचारी बनाने के लिए विज्ञान को उस स्कूल में प्रविष्ट करा दिया था। उन्हें क्या पता था कि ईसाईयों के सदाचार का मापदण्ड भारतीयों के सदाचार से बिलकुल भिन्न होता है।

वे उद्योगपति तो थे, पर आधुनिक उद्योगपतियों जैसे सातों व्यसनों में पारंगत सर्वगुण सम्पन्न नहीं थे। अधिक पढे-लिखे भी नहीं थे। सीधे-सादे सज्जन प्रकृति के धार्मिक रुचि सम्पन्न श्रीमंत थे। अत: उन्हें विज्ञान का बदला हुआ रूप एकदम अटपटा लग रहा था और वे अपने इस कृत्य पर पछता भी रहे थे, पर **'अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत।'** **(क्रमश:)**

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

1 से 4 नवम्बर 2014	उदयपुर (राज.)	वेदी प्रतिष्ठा, विश्वविद्यालय भाषण
1 से 7 जनवरी 2015	नागपुर (महा.)	पंचकल्याणक
15 फरवरी 2015	हस्तिनापुर	शिलान्यास
20 से 22 फर.2015	जयपुर (राज.)	वार्षिकोत्सव
1 से 6 अप्रैल 2015	विदिशा (म.प्र.)	पंचकल्याणक
17 से 23 मई 2015	पारले (मुम्बई)	पंचकल्याणक
24 मई से 10 जून 2015	मेरठ	प्रशिक्षण-शिविर

कोई अन्य द्रव्य तेरा अपना या इष्ट–अनिष्ट है ही कहाँ, जो हमें सुखी–दुखी करे ?

– परमात्मप्रकाश भारिल्ल

संसार में दु:ख का एकमात्र कारण परद्रव्यों के साथ एकत्व, ममत्व और कर्तृत्व बुद्धि है, यदि वह छूट जाए तो हम ज्ञानी हो जाएँ, सुखी हो जाएँ और मुक्त हो जाएँ। इसलिए इस बात का निर्णय अत्यंत आवश्यक है कि क्या सचमुच कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्य का कुछ कर सकता है या कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्य से कोई सम्बन्ध स्थापित कर सकता है ?

यदि नहीं तो क्यों हम प्रत्येक परद्रव्य के प्रति एकत्व, ममत्व और कर्तृत्व बुद्धि छोड़ नहीं देते ? एक चिन्तन –

जगत में अनंत पदार्थ हैं, सब स्वतंत्र और अपने आप में परिपूर्ण, किसी भी पदार्थ का दूसरे से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

हमारी वृत्ति सम्बन्ध खोजने और सम्बन्ध स्थापित करने की है जो कि वस्तुस्वभाव के विपरीत है, अधर्म है, दु:ख का कारण है और संसार में भ्रमण कराने वाली है।

यद्यपि मैं भगवान आत्मा एक, शुद्ध, स्वतंत्र और अपने आपमें परिपूर्ण पदार्थ हूँ,जिसे अपने अस्तित्व के लिए और सुखी होने के लिए किसी भी परपदार्थ के होने की, उसके अपने होने की, उससे लेन–देन की या सहयोग की कोई आवश्यकता नहीं है, तथापि मुझे अपने इस स्वरूप का ज्ञान और भान नहीं है और इसीलिए मैं सुखी होने के लिए निरंतर परपदार्थों की ओर आशाभरी निगाहों से देखता हूँ, अपनी (मिथ्या) मान्यता में उनसे सम्बन्ध स्थापित करता हूँ, इसप्रकार संसार में बँधता हूँ और दु:खी होता हूँ।

मेरे अतिरिक्त इस जगत में अन्य अनंत पदार्थ भी हैं पर वे मेरे नहीं हैं और मैं उनका नहीं हूँ, यहाँ तक कि कोई किसी का नहीं है।

मात्र उनकी सत्ता से, मात्र उनके होने से ही वे मेरे और मैं उनका नहीं हो जाते हैं।

मेरे स्वयं के अतिरिक्त अन्य अनंतानंत पदार्थ जगत में और भी है, इसी लोकाकाश में हैं और उनमें से अनेकों (अनंत) पदार्थ तो आकाश के एक ही प्रदेश में मेरे साथ स्थित है तथापि ***उनके और मेरे बीच अत्यंताभाव है।***

मैं उनका नहीं, वे मेरे नहीं और उनका मुझसे कोई भी सम्बन्ध नहीं।

संयोगवश आकाश के एक ही प्रदेश में होने से न तो कोई मेरा हो जाता है और न ही साथी हो जाता है।

हमारा बच्चा ट्रेन से बम्बई जाता है तो हमें चिंता सताती है कि अकेला जा रहा है।

अरे यूं तो वह अकेला कहाँ है, 1000–1200 अन्य लोग और भी उसी ट्रेन में जा रहे हैं, पर हमें अपना बच्चा अकेला ही महसूस होता है; क्योंकि वे अन्य लोग संयोग तो हैं पर साथी नहीं हैं, अपने नहीं हैं।

अगर संयोग होने मात्र से कोई साथी हो जाता तो हमारा वह बालक अकेला कैसे कहलाता ?

जब यहाँ हमें यह बात समझ मे आती है तो अन्यत्र क्यों नहीं ?

वे संयोग हैं पर साथी नहीं हैं।

इसी प्रकार ***लोकाकाश में अनंत पदार्थ एक दूसरे के संयोग में स्थित हैं पर वे एक दूसरे के नहीं हैं, वे एक दूसरे के साथी नहीं हैं।***

जगत में छह द्रव्य हैं, जिनमें से 5 द्रव्य(पुद्गल–अनंतानंत, धर्म–एक, अधर्म–एक, आकाश–एक और काल–लोकप्रमाण असंख्यात) तो अजीव हैं और हम उन्हें अपना या इष्ट–अनिष्ट मानें भी तो वे तो हमें अपना मानते नहीं, इसप्रकार उनमें हमारा एकत्व या अपनत्व का सम्बन्ध स्थापित करना इकतरफा है। मात्र हमारे उन्हें अपना मानने से वे हमारे नहीं हो जाते हैं।

एक बात और ! हमारे जैसे ही अन्य अनेकों (अनंत) अज्ञानी जीव और भी तो हैं जो उन्हें अपना मानते हैं, तो वे किस किसके हो सकते हैं?

अब बचे जीव, जो अनंत हैं, उनमें भी जो अरिहंत, सिद्ध व ज्ञानी हैं वे तो किसी से अपनापन स्थापित करते नहीं और जो अज्ञानी जीव परपदार्थों से अपनापन स्थापित करते भी हैं, तू उन्हें अपना माने पर वे भी तुझे अपना माने यह तो जरूरी नहीं। जब तक वे भी तुझे अपना स्वीकार न करे तब तक वे तेरे कैसे हो सकते हैं ?

अब सिर्फ कुछ ही तो गिने चुने अन्य जीव बचते हैं, जिन्हें तू भी अपना मानता है और वे भी तुझे अपना मानते हैं, पर उनके साथ भी एकत्व और अपनत्व की यह मान्यता सदाकाल एक जैसी नहीं होती है और समय के साथ–साथ बदलती रहती है। सभी अज्ञानी जीव कभी किसी को अपना मानते हैं और कभी उन्हें पराया मानने लगते हैं और यह परिवर्तन निरंतर चलता रहता है।

इसप्रकार हम यह पाते हैं कि किसी भी द्रव्य का किसी भी द्रव्य के साथ सदाकाल एकत्व और अपनत्व की मान्यता भी सिद्ध नहीं होती है **और स्वभाव तो त्रिकाल होता है, इसलिए *अन्य द्रव्यों के साथ हमारी यह एकत्व और अपनत्व की भावना आधारहीन ही साबित होती है।***

यूं तो सम्पूर्ण लोकाकाश में ही क्यों लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में भी अनेकों पदार्थ एक साथ रहते हैं और यह सिर्फ इस मध्यलोक की ही बात नहीं है, सिद्धशिला में भी यही हाल है।

इस प्रकार साथ रहने वाले अनंत पदार्थ एक दूसरे के साथी नहीं हो जाते हैं, ***यदि संयोगवश साथ रहने मात्र से परपदार्थ साथी बन जाते, एक दूसरे के हो जाते तो सिद्ध भगवान कभी मुक्त ही न होते।***

जगत के अनंतपदार्थ आकाश के एक प्रदेश में स्थित होते हुए भी सिर्फ अपनेआप में रहते हैं और एक दूसरे में कोई भी हस्तक्षेप नहीं करते हैं, वे सब अपने आप में परिपूर्ण हैं और उन्हें किसी से कुछ भी पाने की आवश्यकता नहीं है और न ही उनके पास ऐसा कुछ अतिरिक्त

है कि किसी अन्य को कुछ दे सके।

यह तो हमारी अपनी मिथ्या मान्यता ही है कि हम अपने आपमें कुछ कमी महसूस करते हैं और उस कमी को पूरी करने के लिए परपदार्थों की ओर आशा भरी निगाहों से देखते हैं, उन्हें ग्रहण करना चाहते हैं या किन्हीं पदार्थों को अपने लिए अनिष्ट मानकर उन्हें दूर करना चाहते हैं, नष्ट कर देना चाहते हैं, पर यह दोनों ही संभव ही नहीं है।

जगत में साथ रहने वाले अनंत पदार्थों को हमने अपना मान लिया, साथी मान लिया और फिर उनमें इष्ट–अनिष्ट की कल्पना करने लगे हैं और इस तरह सुखी–दुखी होने लगे।

*अरे! **यदि कोई पदार्थ अनिष्ट होता तो वह सभी के लिए, हमेशा ही और सर्वत्र ही अनिष्ट होना चाहिए न ?***

*पर तू जिसे अपने लिए अनिष्ट मान रहा है, अन्य अनेकों लोग उसी को अपने लिए इष्ट मान रहे हैं और तो और तू ही उन्हें कभी अनिष्ट तो कभी इष्ट मानता है, **तब अनिष्ट या इष्टपना उक्त पदार्थ में कहाँ हुआ, यह तो सम्बन्धित लोगों की मान्यता में हुआ।***

यूं भी तू यदि किसी भी एक परपदार्थ को भी अपना मानता है तो यह एक छोटा सा अपराध नहीं बल्कि अनंत परपदार्थों की स्वतंत्र सत्ता को अस्वीकार करने का महाअपराध है, यह तेरा उनके प्रति अनंत क्रोध है, यह अनंतानुबंधी कषाय है, यह मिथ्यात्व है।

जगत का कोई भी पदार्थ यदि तेरा हो सकता है तो फिर सभी क्यों नहीं ?

तू किसी को तो अपना मानता है और किसी अन्य को किसी भी कीमत पर अपना स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं।

एक ही पदार्थ को तू आज अपना मानता है और कल पराया घोषित कर देता है और फिर कभी दुबारा अपना मानने लगता है, ऐसा कैसे संभव है ?

कोई अपना, पर कैसे हो सकता है और परपदार्थ अपना कैसे हो सकता है ?

इसी प्रकार इष्ट और अनिष्ट की परिकल्पना में होता है कि एक ही पदार्थ हमें कभी इष्ट और कभी अनिष्ट लगता है और यह इष्ट–अनिष्टता की परिकल्पना सदैव परिवर्तित होती रहती है।

हम भी वहीं रहते हैं, वह भी वहीं रहता है, पर उसके प्रति इष्ट–अनिष्ट की परिकल्पना परिवर्तित होती रहती है।

स्नेह करती हुई पत्नी हमें इष्ट प्रतीत होती है और क्रोधित पत्नी अनिष्ट प्रतीत होती है।

आज्ञा मानता हुआ पुत्र इष्ट प्रतीत होता है और आज्ञा का उल्लंघन करता हुआ वही पुत्र अनिष्ट प्रतीत होता है।

तब इष्ट–अनिष्टपना वस्तु में कहाँ रहा वह तो हमारी मान्यता में ही रहा न।

जगत के किसी भी पदार्थ में स्थित अनंत गुण उसका अपना वैभव है, वे उसके धर्म हैं, उसके लिए हितकर हैं और वे तेरे कुछ नहीं, वे तुझमें कोई हस्तक्षेप ही नहीं करते हैं तब आखिर तुझे उन्हें इष्ट या अनिष्ट, अच्छा या बुरा कहने या मानने का क्या अधिकार है?

जगत में कोई पदार्थ तेरे लिए न तो साथी हैं और न ही इष्ट या अनिष्ट ही, वे तो जो हैं सो हैं।

वे तो अपने आप में परिपूर्ण, स्वतंत्र, परमपवित्र, अखंड द्रव्य हैं।

यह संगी–साथी या इष्ट–अनिष्टपना मात्र हमारी मिथ्या मान्यता है।

हम अपनी मिथ्या मान्यता के कारण परपदार्थों को अपना मानते हैं और उनमें इष्ट–अनिष्टपने की कल्पना करते हैं और इसीलिए दुखी होते हैं।

इसप्रकार हम पाते हैं कि हमारे दुःख के कारण परपदार्थ नहीं, परपदार्थों की निकटता नहीं मात्र उनमें एकत्व और अपनत्व संबंधी, इष्ट और अनिष्ट संबंधी अपनी मिथ्या मान्यता है।

स्वाभाविक ही है कि हम अपनी उक्त मिथ्या मान्यता का त्यागकर परमसुखी हो सकते हैं।

हमें अनंत सुखी होने के लिए किसी अन्य को तो कुछ करना ही नहीं है, हमें स्वयं को भी अन्य कुछ नहीं करना है मात्र अपनी मिथ्या मान्यता का त्याग करना है।

हम तो अपने आप में परिपूर्ण, परम पवित्र और परम सुखी हैं ही।●

अष्टाह्निका पर्व सानन्द संपन्न

(1) अजमेर (राज) : यहाँ पुरानी मण्डी स्थित सीमन्धर जिनालय में कार्तिक माह की अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर दिनांक 30 अक्टूबर से 6 नवम्बर तक श्री सैंतालीस शक्ति विधान का आयोजन अतिउत्साह के साथ संपन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित मनीषजी शास्त्री इन्दौर द्वारा तीनों समय 47 शक्तियों, प्रथमानुयोग व करणानुयोग पर कक्षाओं का लाभ मिला। आपकी कक्षाओं से युवा वर्ग अत्यधिक प्रभावित हुआ। कार्यक्रम में लगभग 100 साधर्मियों ने पधारकर धर्म लाभ लिया।

विधि–विधान के समस्त कार्य पण्डित दिनेशजी कासलीवाल उज्जैन के निर्देशन में स्थानीय श्री वीतराग महिला मण्डल द्वारा संपन्न हुआ।

(2) टीकमगढ (म.प्र.) : यहाँ अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर दिनांक 30 अक्टूबर से 6 नवम्बर तक ज्ञानमंदिर में श्री गुलाबचंदजी परिवार मुम्बई द्वारा श्री सिद्धचक्र मण्डल विधान का आयोजन हुआ।

इस अवसर पर प्रतिदिन 1 घंटा गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित सुबोधजी सिंघई सिवनी के प्रवचनों का लाभ मिला।

विधि–विधान के समस्त कार्य पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर द्वारा संपन्न हुये। **– संजय जैन हल्ले**

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो, प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें–
वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र–श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph. : 022-26130820, 26104912, E-Mail - info@vitragvani.com

दृष्टि का विषय

6 द्वितीय प्रवचन –डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

कोई व्यक्ति सेठ भी हो और विद्वान भी हो। उसके लिए ये सेठ साहब हैं, बहुत पैसेवाले हैं, बहुत दान देते हैं – ऐसा कहकर उनका एक स्वरूप प्रदर्शित किया। इसमें दूसरा स्वरूप, जो इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण था, वह बिना कहे ही रह गया। दूसरे दिन दूसरे स्वरूप को कहा जाये कि ये बहुत अच्छे विद्वान हैं, बहुत अच्छा प्रवचन करते हैं; तो उन्हें आकुलता हो जाती है कि मुझे कोई अकेला पण्डित ही न समझ लें, मैं तो सेठ भी हूँ।

जिसप्रकार किसी व्यक्ति के दो गुणों में से एक गुण बताओ तो उसे बेचैनी हो जाती है। वह चाहता है कि मेरा दूसरा गुण भी साथ में बताया जाये। उसीप्रकार **जिस आत्मा में अनन्त गुण हों, उसको मात्र एक गुण (ज्ञान मात्र) से कहना क्या उसका अपमान नहीं है ?**

पूज्य गुरुदेवश्री भी कहते थे कि ज्ञानमात्र कहने से सम्पूर्ण आत्मा समझ में नहीं आता है। आत्मा तो अनन्त गुणों के परिणमनस्वरूप है, अनन्तगुणरूप है। मात्र एक ज्ञानगुण के कहने से सम्पूर्ण आत्मा समझ में नहीं आता।

आचार्य अमृतचन्द्र को भी **'ज्ञानमात्र में अनन्त गुण व्याप्त हैं'** – यह बात समझाने के लिए पूरा परिशिष्ट लिखना पड़ा। उन्होंने लिखा कि अभी तक हम आत्मा को ज्ञानमात्र कहते आये हैं, सो कोई आत्मा को ज्ञानमात्र ही न समझ ले; क्योंकि वह तो अनन्तगुणमय है। ज्ञानमात्र कहने से अनन्तगुणों का अखण्डपिण्ड भगवान आत्मा ही समझना चाहिए।

यह तो हमारी मजबूरी है कि अनंत गुणों के नाम एक साथ नहीं लिये जा सकते हैं; इसलिए उसे ज्ञानमात्र कहते हैं। अनन्तगुणों को एक साथ नहीं कह पाने के कारण मजबूरी में यह व्यवहार खड़ा है। **वास्तव में तो इस ज्ञान शब्द में अनन्त गुण व्याप्त हैं।**

सन् १९६०–६१ में मैंने एक दोहा लिखा था, जो कि इसप्रकार है–

ज्ञानमात्र इस शब्द में, हैं अनन्त गुण व्याप्त।
ज्ञायक भी कहते उसे, प्रकट पुकारा आप्त।।

भोपाल में झरने के मंदिर में बैठकर सुबह ६ बजे मैंने यह दोहा लिखा था। हमीदिया अस्पताल में ७ बजे मेरा 'अपैन्डिक्स्' का ऑपरेशन होना था तो ५ बजे मैं मंदिर चला गया और वहीं यह दोहा लिखा था, वहीं साथ में १०–२० दोहे और लिखे थे। वह कागज, जिस पर मैंने दोहे लिखे थे, किसी को दे दिया था; फिर मुझे वह आज तक नहीं मिला। लेकिन उनमें से दस–पाँच दोहे याद रह गए, उनमें से एक यह भी है।

इसका अर्थ इसप्रकार है कि **'ज्ञान' इस शब्द में अकेला ज्ञानगुण ही नहीं समझना। इस 'ज्ञान' शब्द में अनन्त गुण व्याप्त हैं तथा उसे 'ज्ञायक' भी कहते हैं,** ऐसा आप्त अर्थात् सच्चे देव ने कहा है।

यहाँ ज्ञायक का अर्थ मात्र जाननेवाला मत समझना; क्योंकि ज्ञायक तो अनन्त गुणों के अखण्डपिण्ड का नाम है।

यदि ज्ञायक को मात्र जाननेवाला ही ग्रहण किया तो वह एक ज्ञानगुणवाला हो जायेगा और ज्ञानगुणवाला कहने से भेद खड़ा हो जायेगा तथा **भेद का नाम तो पर्याय है, वह पर्याय त्रिकाली ध्रुव में शामिल नहीं है।**

हर वस्तु स्वचतुष्टय से युक्त होती है, यह एक नियम है। वस्तु उसी का नाम है, जो स्वचतुष्टय से युक्त हो।

जिसप्रकार नागरिक शास्त्र में ऐसा कहा है कि देश उसे कहते हैं, जिसका एक निश्चित भू–भाग हो। उदाहरण के तौर पर – हिन्दुस्तान और पाकिस्तान, ये देश हैं और राजस्थान प्रान्त है, देश नहीं है।

लन्दन में एक सिक्ख रहता था, जो अपने आपको खालिस्तान का प्रधानमंत्री कहता था। उससे जब पूछा गया कि तुम्हारा खालिस्तान कहाँ है ? तो उसने कहा कि – हिन्दुस्तान में जो पंजाबी सूबा है, जिसको स्वतंत्र करने के लिए हम आन्दोलन कर रहे हैं, जब वह पंचाबी सूबा हिन्दुस्तान से अलग होगा, तब उसका नाम हम खालिस्तान रखेंगे और उसी खालिस्तान का मैं प्रधानमंत्री हूँ। इसप्रकार वह अपने आपको खालिस्तान का प्रधानमंत्री कहता था।

लेकिन दुनिया के किसी भी देश ने; न अमेरिका ने, न रूस ने और न ही चीन ने; उसे इसप्रकार की मान्यता दी कि वो खालिस्तान का प्रधानमंत्री है; क्योंकि उस 'खालिस्तान' नामक देश का पृथक् कोई निश्चित भू–भाग नहीं था और न वह व्यक्ति वहाँ रहता था। **देश तो उसे कहते हैं, जिसका एक निश्चित भू–भाग होता है।**

उसीप्रकार वस्तु भी उसे कहते हैं, जिसमें चार चीजे पाई जावें। यदि चार चीजों में से एक भी खण्डित हो गई तो वह अवस्तु ही है और अवस्तु गधे के सींग के समान होती है। **वस्तु में पाई**

जानेवाली वे चार चीजे हैं – द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव।

आचार्य समन्तभद्र ने 'आप्तमीमांसा' में लिखा है –

सदैव सर्वं को नेच्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासात्, न चेन्न व्यवतिष्ठते।।

इस दुनिया में ऐसा कौन है, जो वस्तु को स्वरूप चतुष्टय की अपेक्षा सत् रूप में स्वीकार नहीं करेगा और ऐसा कौन है, जो वस्तु को परचतुष्टय की अपेक्षा नास्तिरूप स्वीकार नहीं करेगा ? **यदि उसने द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव – ये चार चीजें स्वीकार नहीं कीं तो वस्तु–व्यवस्था ही नहीं बनेगी।**

द्रव्य का अर्थ है वस्तु, क्षेत्र का अर्थ है प्रदेश, काल का अर्थ है पर्याय और भाव का अर्थ है गुण। **जिसमें द्रव्य, गुण, पर्याय और प्रदेश शामिल हों, उसका नाम ही वस्तु है।**

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने भी 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में लिखा है कि **अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न–भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती हैं।**[१] यहाँ अनादिनिधन कहकर काल की बात कही है।

जब दृष्टि के विषय में पर्याय का निषेध किया जाता है तो हम काल नामक विभाग का निषेध समझ लेते हैं; जबकि वस्तु के जो चार विभाग द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव हैं; उसमें जो काल नामक विभाग है, वह तो दृष्टि के विषय में शामिल है।

सबसे बड़ा खतरा यही है कि 'काल' विभाग को पर्याय समझ कर उसका निषेध कर दिया जाता है।

आचार्य समन्तभद्र ने यही कहा है कि काल के बिना अखण्ड वस्तु स्वीकार ही नहीं की जा सकती है। काल के बिना वस्तु तो गधे के सींग के समान है।

इसीलिए मैंने समयसार की सातवीं गाथा के अनुशीलन में विस्तार से इसी बात को समझाने का प्रयास किया है।

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में भी आचार्य अमृतचंद्रदेव ने लिखा है कि **न द्रव्येण खण्डयामि, न क्षेत्रेण खण्डयामि, न कालेण खण्डयामि, न भावेण खण्डयामि** अर्थात् न तो मैं द्रव्य से खण्डित हूँ, न क्षेत्र से खण्डित हूँ, न काल से खण्डित हूँ, न भाव से खण्डित हूँ; मैं तो एक अखण्ड तत्त्व हूँ।

भारत को सन् १९४७ में आजादी मिली। यदि अंग्रेज यह कहते कि भारत को आजादी तो दे देते हैं, लेकिन दिल्ली हमारे कब्जे में रहेगी तो इसे कहा जायेगा कि भारत क्षेत्र से खण्डित हो गया।

(क्रमशः)

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ५२

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

श्री टोडरमल स्मारक भवन

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राजस्थान)

शीतकालीन परीक्षा कार्यक्रम सत्र–2015

दिन व दिनांक	नाम ग्रन्थ
रविवार 25 जनवरी 2015	1. बालबोध पाठमाला भाग–1 (मौखिक) 2. जैन बालपोथी भाग–1 (मौखिक) 3. वीतराग–विज्ञान पाठमाला भाग–1 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–1 5. छहढाला (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) पूर्वार्द्ध 7. मोक्षमार्गप्रकाशक (पूर्वार्द्ध) 8. जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (गोपालदासजी बरैया कृत) 9. विशारद प्रथम खण्ड –प्रथम वर्ष
सोमवार 26 जनवरी 2015	1. बालबोध पाठमाला भाग–2 (मौखिक) 2. जैन बालपोथी भाग–2 (मौखिक) 3. वीतराग–विज्ञान पाठमाला भाग 2 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग–2 5. द्रव्यसंग्रह (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) उत्तरार्द्ध 7. लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका (सोनगढ़) 8. मोक्षमार्गप्रकाशक (उत्तरार्द्ध) 9. विशारद प्रथम खण्ड –द्वितीय वर्ष 10. विशारद द्वितीय खण्ड –प्रथम वर्ष
मंगलवार 27जनवरी 2015	1. बालबोध पाठमाला भाग–3 (मौखिक) 2. वीतराग–विज्ञान पाठमाला भाग–3 3. रत्नकरण्डश्रावकाचार (पूर्ण) 4. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (पूर्ण) 5. विशारद द्वितीय खण्ड –द्वितीय वर्ष

नोट – (1) सुविधानुसार परीक्षा का समय सुबह 9 बजे से शाम 5 बजे तक के बीच में कभी भी सैट किया जा सकता है।

(2) जहाँ एक से अधिक केन्द्र हों, वे आपस में मिलकर समय निश्चित करें।

(3) यदि किन्हीं विषयों के छात्र आपस में टकराते हों तो परीक्षा सुविधानुसार दिन में दो बार ली जा सकती है।

(4) बालबोध पाठमाला भाग 1, 2, 3 और जैन बालपोथी भाग 1 व 2 की परीक्षायें मौखिक लेवें। शेष सभी विषयों की परीक्षायें लिखित में लेवें।

– ओमप्रकाश आचार्य (प्रबंधक – परीक्षा बोर्ड)

17 नवम्बर 2014, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. PC / FN-32 / 2012-14

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के संबंध में उनके समकालीन मनीषियों द्वारा व्यक्त किये गये हृदयोद्गार –

विद्वत्वर्ग में प्रतिष्ठा-प्राप्त, महान दार्शनिक विद्वान **पण्डित चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ,** जयपुर ने आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के बारे में लिखा है –

''इसमें कोई शक नहीं कि कानजीस्वामी के उदय से अनेक अंशों में क्रान्ति उत्पन्न हुई है। पुराना पोपडम खत्म हो रहा है और लोगों को नई दिशा मिल रही है। यह मानना गलत है कि वे एकान्त निश्चय के पोषक हैं। हम सोनगढ में एवं सर्वत्र फैले हुए उनके अनुयायियों में निश्चय और व्यवहार का सन्तुलन देख रहे हैं। सौराष्ट्र में अनेकों नवीन मन्दिरों का निर्माण तथा उनकी प्रतिष्ठायें स्पष्ट बतलाती हैं कि वे व्यवहार का अपलाप नहीं करते। ये भगवान कुन्दकुन्द के सच्चे अनुयायी हैं। जो उनकी आलोचना करते हैं वे आपे में नहीं हैं व उन्होंने न निश्चय को समझा है न व्यवहार को और सच तो यह है कि उन्होंने जैन शास्त्रों का हार्द ही नहीं समझा।

सोनगढ से जो धार्मिक साहित्य निकल रहा है उससे स्वाध्याय का बहुत प्रचार हुआ है।...निमित्त और उपादान तथा क्रमबद्धपर्याय आदि दार्शनिक चीजें हैं, विद्वानों के समझने की हैं। ऐसी चीजों को आन्दोलन का विषय बनाना समाज की शक्ति को क्षीण करना है। हमें प्रत्येक प्रसंग को निष्पक्ष दृष्टि से देखना चाहिए। उनका प्रयत्न प्रशंसनीय है।''

श्री टोडरमल जैन मुक्त विद्यापीठ के छात्र ध्यान दें

पत्राचार पाठ्यक्रम की दिसम्बर 2013 के अंतिम सप्ताह में होने वाली द्वितीय सेमेस्टर की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम का विवरण निम्नानुसार है; परीक्षार्थी इसी के अनुसार तैयारी करें –

द्विवर्षीय विशारद परीक्षा की सैकेण्ड सेमेस्टर परीक्षा

प्रथम वर्ष – 1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग 2
2. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग 3

द्वितीय वर्ष – 1. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग 2
2. धर्म के दशलक्षण + भक्तामर स्तोत्र

त्रिवर्षीय सिद्धांत विशारद परीक्षा की सैकेण्ड सेमेस्टर परीक्षा

प्रथम वर्ष – 1. रत्नकरण्ड श्रावकाचार
2. रामकहानी + आप कुछ भी कहो

द्वितीय वर्ष – 1. मोक्षमार्गप्रकाशक पूर्वार्द्ध (1 से 5 अध्याय)
2. नयचक्र-पूर्वार्द्ध (निश्चय व्यवहार)
3. हरिवंशकथा + भ.महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ

तृतीय वर्ष – 1. मोक्षमार्गप्रकाशक उत्तरार्द्ध (6 से 10 अध्याय)
2. नयचक्र-उत्तरार्द्ध (द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय प्रकरण)
3. शलाका पुरुष (सम्पूर्ण)

नोट : सभी परीक्षार्थियों को उनके प्रश्नपत्र केन्द्र/उनके पते पर दिसम्बर के तृतीय सप्ताह तक डाक द्वारा भेज दिये जायेंगे। यदि 25 दिसम्बर तक भी पेपर न मिले तो जयपुर कार्यालय से संपर्क करें।

प्रकाशन तिथि : 13 नवम्बर 2014

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
सह-सम्पादक : **डॉ.संजीवकुमार गोधा,** एम.ए.द्वय, नेट, एम.फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी. एवं **पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल**
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए रेनबो ऑफसेट प्रिण्टर्स, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें –
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com **फैक्स :** (0141) 2704127